अंगविज्जा और नमस्कार मन्त्र की विकास यात्रा

नमस्कार मन्त्र जैन धर्म का आधारभूत और सर्वसम्प्रदायमान्य मन्त्र है। परम्परागत विश्वास तो यही है कि यह मन्त्र अनादि-अनिधन है और जैन आगमों का सारतत्त्व एवं आदि स्रोत है। इस मन्त्र के सन्दर्भ में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है- 'चउदह पूरब केरो सार समरो सदा मन्त्र नवकार' मात्र यही नहीं, नमस्कार महामन्त्र का महाश्रुतस्कन्ध ऐसा नामकरण भी इसी तथ्य का सूचक है। आगमों के अध्ययन के पूर्व प्रारम्भ में इसी का अध्ययन कराया जाना भी यही सूचित करता है कि यह उनका आदि स्रोत है। नमस्कारमन्त्र के पाँचो पद व्यक्तिवाचक न होकर गुणवाचक हैं। इन गुणों का अस्तित्व अनादि अनिधन है और ऐसे गुणी जनों के प्रति विनय का भाव भी स्वाभाविक है अतः इस दृष्टि से नमस्कार मन्त्र को अनादि माना जा सकता है। किन्तु विद्वानों की मान्यता भिन्न है। उनके अनुसार चूलिका सहित पञ्चपदात्मक सम्पूर्ण नमस्कार मन्त्र का एक क्रमिक विकास हुआ है। प्रस्तुत निबन्ध में हम **अंगविज्जा** और खारवेल के अभिलेख के विशेष सन्दर्भ में नमस्कार मन्त्र की इस विकासयात्रा का अध्ययन करेंगे।

जैन आगम साहित्य के प्राचीन स्तर के ग्रन्थ, **आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक** आदि में नमस्कारमन्त्र का कोई भी निर्देश हमें उपलब्ध नहीं होता है। यद्यपि **दशवैकालिकसूत्र** में आर्य शय्यम्भव ने यह निर्देश किया है कायोत्सर्ग को नमस्कार से पूर्ण करना चाहिये किन्तु इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि यह नमस्कार पञ्चपदात्मक होता था। सामायिक सूत्र में कायोत्सर्ग के आगार सूत्र में यह पाठ आता है कि 'अरिहंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं न पारेमि'[१] अर्थात् अरहंताणं से इसे पूर्ण करूँगा। वर्तमान परम्परा से इसकी पुष्टि भी होती है। फिर भी नमस्कार से तात्पर्य पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र से रहा होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र के निर्देश जिन आगमों में उपलब्ध होते है उनमें अङ्ग आगमों में **भगवतीसूत्र** के अतिरिक्त अन्य किसी भी अङ्ग आगम ग्रन्थ में नमस्कार मन्त्र का निर्देश नहीं है। अङ्गबाह्य आगमों में **प्रज्ञापनासूत्र** के प्रारम्भ में भी नमस्कार मन्त्र उपलब्ध होता है। **प्रज्ञापना** के अतिरिक्त **महानिशीथ** के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रारम्भ में भी नमस्कार मन्त्र का निर्देशन मिलता है (ॐ नमो नित्थस्स । ॐ नमो अरहंताणं ।)[२]

भगवतीसूत्र एवं **प्रज्ञापना** के प्रारम्भ में पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का निर्देश तो है, किन्तु यह उनका अङ्गीभूत अंश है अथवा प्रक्षिप्त अंश है, इसको लेकर विद्वानों में मतवैभिन्न देखा जाता है। कुछ विद्वानों का कहना है कि **प्रज्ञापना** के टीकाकार मलयगिरि इसकी कोई टीका नहीं करते हैं, इसलिए यह मन्त्र उसका अङ्गीभूत मन्त्र नहीं है। इसे बाद में मङ्गल सूचक आदि वाक्य के रूप में जोड़ा गया है, अतः प्रक्षिप्त अंश है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यद्यपि **भगवतीसूत्र** के प्रारम्भ में पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र तो मिलता है, किन्तु उसकी चूलिका नहीं मिलती है, उसके स्थान पर 'नमो बंभी-लिविए' यह पद मिलता है। अतः यह कल्पना की जा सकती है कि ब्राह्मीलिपि के प्रति यह नमस्कारात्मकपद तभी उसमें जोड़ा गया होगा, जब इस ग्रन्थ को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया होगा। **भगवतीसूत्र** के पश्चात् **प्रज्ञापनासूत्र** में भी पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र उपलब्ध होता है। किन्तु **प्रज्ञापनासूत्र** निश्चित ही ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग निर्मित हुआ है। अतः इस आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी तक पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का विकास हो चुका था। जहाँ तक **महानिशीथ** का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि उसकी मूलप्रति दीमकों से भक्षित हो जाने पर आचार्य हरिभद्र ने ही इस ग्रन्थ का पुनरोद्धार किया। हरिभद्र का काल स्पष्ट रूप से लगभग ईसा की ७वीं-८वीं शताब्दी माना जाता है। अतः **महानिशीथसूत्र** में चूलिका नमस्कारमन्त्र की उपस्थिति उसकी विकास यात्रा को समझने में किसी भी प्रकार सहायक नहीं होती है। **महानिशीथ**[३] में जो यह बताया गया है कि 'पञ्चमङ्गल महाश्रुतस्कन्ध का व्याख्यान मूलमन्त्र की निर्युक्ति भाष्य एवं चूर्णि में किया गया था और यह व्याख्यान तीर्थंकरों से प्राप्त हुआ था। काल दोष से वे निर्युक्तियाँ, भाष्य और चूर्णियाँ नष्ट हो गईं। फिर कुछ समय पश्चात् वज्रस्वामी ने नमकार महामन्त्र का उद्धार कर उसे मूल सूत्र में स्थापित किया। यह वृद्धसम्प्रदाय है।' यह तथ्य नमस्कारमन्त्र के रचयिता का पता लगाने में सहायक होता है।

यद्यपि **आवश्यक निर्युक्ति** में वज्रस्वामी के उल्लेख में इस घटना का निर्देश नहीं है, फिर भी इससे दो बातें फलित होती है- प्रथम तो यह कि हरिभद्र के काल तक यह अनुभूति थी कि नमस्कार महामन्त्र के उद्धारक वज्रसूरि थे और दूसरे यह कि उन्होंने इसे आगम में स्थापित किया। इसका तात्पर्य यह भी है कि **भगवतीसूत्र** में नमस्कारमन्त्र की स्थापना वज्रस्वामी ने की और वे ही इसके उद्धारक या किसी अर्थ में इसके निर्माता हैं। वज्रस्वामी का काल लगभग ईसा की प्रथम शती है। संयोग से यही काल **अंगविज्जा** का है। खारवेल का अभिलेख इससे लगभग १५० वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व का है। आगमिक व्याख्या साहित्य में **आवश्यक निर्युक्ति** में सर्वप्रथम हमें सम्पूर्ण चूलिका सहित नमस्कारमन्त्र का निर्देश मिलता है। **आवश्यक निर्युक्ति** में पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र के साथ-साथ उसकी चूलिका भी उपलब्ध हो जाती है। मैंने अपने एक स्वतन्त्र लेख में यह स्थापित करने का प्रयत्न किया है कि निर्युक्ति का रचनाकाल ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग है। इससे यह फलित होता है कि चूलिका सहित पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र लगभग ईसा की दूसरी शताब्दी में अस्तित्व में आ गया था। दिगम्बर परम्परा में **षट्खण्डागम** के आदि में भी पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र उपलब्ध होता है किन्तु विकसित गुणस्थान सिद्धान्त की उपस्थिति आदि के कारण यह ग्रन्थ ईसा की ५वीं शताब्दी के पूर्व का सिद्ध नहीं होता है। इसी प्रकार **मूलाचार** में भी चूलिका सहित नमस्कारमन्त्र उपलब्ध होता है किन्तु यह ग्रन्थ भी लगभग ६ठी शताब्दी के आस-पास का है। इसमें तो नमस्कारमन्त्र और उसकी चूलिका आवश्यक निर्युक्ति से ही उद्धृत की गई है। क्योंकि **मूलाचार** एवं **आवश्यक निर्युक्ति** में न केवल प्रस्तुत चूलिका सहित नमस्कारमन्त्र उद्धृत हुआ है, अपितु उसकी अनेक गाथाएँ भी उद्धृत हैं, अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **आवश्यक निर्युक्ति** के काल तक अर्थात् ईसा की दूसरी शती तक नमस्कारमन्त्र का पूर्णतः विकास हो चुका था। परम्परागत मान्यता यह है कि 'सिद्धाणं नमो किच्चा' अर्थात् सिद्धों को नमस्कार करके जहाँ तीर्थंकर दीक्षित होते हैं। जहाँ तक अरहंत पद का प्रश्न है- **भगवती, आचाराङ्ग** (द्वितीय श्रुतस्कन्ध), **कल्पसूत्र** एवं **आवश्यकसूत्र** के शक्रस्तव में 'नमोत्थुणं अरहंताणं' के-रूप में अरहंत को नमस्कार किया गया है। सम्भवतः यहीं से नमस्कार मन्त्र की विकास यात्रा प्रारम्भ होती है। **महानिशीथ** सूत्र के प्रारम्भ में नमो तित्थस्स, नमो अरहंताणं-ऐसे दो पद मिलते हैं। इसमें नमस्कार मन्त्र का तो मात्र एक ही पद है। फिर उसमें 'नमो सिद्धाणं' पद जुड़कर द्विपदात्मक नमस्कार मन्त्र बना होगा इस प्रकार प्रारम्भ में नमस्कारमन्त्र अरहंत और सिद्ध-ऐसा द्विपदात्मक रहा होगा। यद्यपि आगमों में संयुक्त रूप में द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र कहीं उपलब्ध नहीं होता है। मथुरा के ई०पू० प्रथम शती तक के अभिलेखों में कुछ अभिलेखों में 'नमो अरहंता' यह एक पद ही मिलता है। **अंगविज्जा** के चतुर्थ अध्याय 'अंगस्तय' में 'नमो अरहंताणं' ऐसा एक ही पद है जो अध्याय के आदि में दिया जाता है। इसके पश्चात् **अंगविज्जा** के अष्टम अध्याय में द्विपदात्मक, त्रिपदात्मक और पञ्चपदात्मक नमस्कार मन्त्र मिलता है। **अंगविज्जा** में मुझे नमस्कारमन्त्र की चूलिका नहीं मिली, इस आधार पर यह माना जा सकता है कि चूलिका की रचना **अंगविज्जा** की रचना के पश्चात् ही निर्युक्तियों के रचनाकाल के समय हुई। इस प्रकार यह तो निश्चित होता है कि चूलिका रहित पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र लगभग ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी में अस्तित्व आ गया था। अभी तक की शोधों के आधार पर केवल यह **अंगविज्जा** के अध्ययन के बिना निश्चित हो पा रहा था कि ईसा की प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शताब्दी में पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का और ईसा की दूसरी शताब्दी में उसकी चूलिका का निर्माण हुआ होगा। उसके पूर्व नमस्कारमन्त्र की क्या स्थिति थी? यह विचारणीय है। प्राचीन स्तर के आगमों यथा **आचाराङ्ग** आदि में 'अरहंत' पद तो प्राप्त होता है, किन्तु उसके साथ 'नमो' पद की कोई योजना नहीं है। आगम में 'नमो' पद पूर्वक 'सिद्ध' पद का प्रयोग **उत्तराध्ययनसूत्र**[४] में मिलता है। उसमें 'सिद्धाणं नमो' ऐसा प्रयोग मिला है। **भगवती** और **कल्पसूत्र** में 'नमोत्थुणं अरहंताणं,' ऐसा पद मिलता है। किन्तु 'नमो अरहंताणं, नमो सिद्धाणं' ऐसे दो पद मुझे देखने में नहीं आये।

इसी सन्दर्भ में सर्वप्रथम लगभग ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी का एक अभिलेखीय साक्ष्य प्राप्त होता है जिसमें द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र का निर्देश है। भुवनेश्वर (उड़ीसा) के खारवेल के हत्थीगुम्फा अभिलेख (ई०पू० दूसरी शताब्दी) में हमें निम्न दो पद मिलते हैं- १. 'नमो अरहंता,' २. 'नमो सव्व सिद्धाणं।'

इस प्रकार द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र का ई०पू० का अभिलेखीय साक्ष्य तो मिला, किन्तु किसी साहित्यिक साक्ष्य से इसकी पुष्टि नहीं हो पा रही थी। मात्र इतना ही नहीं, इसमें 'सिद्धाणं' के साथ जो 'सव्व' विशेषण जुड़ा हुआ है, उसकी भी किसी साहित्यिक साक्ष्य से कोई पुष्टि नहीं हो पा रही थी। संयोग से जब मैं अपनी पुस्तक **'जैन धर्म और तान्त्रिक साधना'** का 'जैन धर्म और मन्त्र साधना' नामक अध्याय लिख रहा था, तो जैन मन्त्रों के प्रारम्भिक स्रोतों को खोजने हेतु **अंगविज्जा** का अध्ययन कर रहा था तो मुझे उसमें न केवल द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र प्राप्त हुआ अपितु उसमें 'सव्व' विशेषण युक्त **'सिद्धाणं'** पद भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार हमें खारवेल के अभिलेख के द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र का सम्पूर्ण साहित्यिक साक्ष्य **अंगविज्जा** में प्राप्त हुआ। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि द्विपदात्मक इस नमस्कारमन्त्र के अभिलेखीय एवं साहित्यिक साक्ष्य समकालिक भी हैं। पुण्यविजय जी म०सा० द्वारा सम्पादित इस **अंगविज्जा** की **'भूमिका'** में डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अंगविज्जा को कुषाणकाल अर्थात् ईसा की प्रथम शती की रचना माना है। खारवेल का अभिलेख इससे लगभग १५० वर्ष पूर्व का होगा। इस प्रकार **अंगविज्जा,** से खारवेल के अभिलेख से किञ्चित् परवर्ती है। यही कारण है कि **अंगविज्जा** में नमस्कारमन्त्र के एक पदात्मक, द्विपदात्मक, त्रिपदात्मक एवं पञ्चपदात्मक चारों ही रूप देखने को मिलते हैं। किन्तु **अंगविज्जा** में हमें नमस्कारमन्त्र की चूलिका (एसो पञ्च नमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं) का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता है। अतः हम कह सकते हैं कि नमस्कारमन्त्र की चूलिका **एक परवर्ती रचना है। *इसका सर्वप्रथम निर्देश आवश्यक निर्युक्ति में उपलब्ध होता* है। यदि आवश्यक निर्युक्ति को मेरी मान्यता के अनुसार आर्यभद्र की रचना माना**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाए तो उसका काल ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग स्थापित होता है। इस समय चर्चा से इतना अवश्य फलित होता है कि पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का विकास ईसा की प्रथम शताब्दी में आये वज्र के समय में हो चुका था। उसमें ईसा की दूसरी शती में चूलिका जुड़ी। द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र से पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र के विकास में लगभग एक या दो शताब्दी व्यतीत हुई। खारवेल के अभिलेख और **अंगविज्जा** की रचना के बीच जो लगभग १५० वर्षों का अन्तर है, वही द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र से पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र के विकास का काल माना जा सकता है। जैसा कि हम पूर्व में उल्लेख कर चुके हैं— **अंगविज्जा** में एक पदात्मक, द्विपदात्मक और पञ्चपदात्मक चारों ही प्रकार के नमस्कारमन्त्र का उल्लेख उपलब्ध है। **अंगविज्जा** के प्रारम्भ में आदि मङ्गल के रूप में पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र है किन्तु उसके ही चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में मङ्गल रूप में 'नमो अरहंताणं'-ऐसा एक ही पद है। पुनः **अंगविज्जा के** अष्टम अध्याय में महानिमित्तविद्या एवं रूप-विद्या सम्बन्धी जो मन्त्र दिये गये हैं उसमें द्विपदात्मक नमस्कारमन्त्र 'नमो अरहंताणं' और 'नमो सव्वसिद्धाणं' ऐसे दो पद मिलते हैं। इसमें भी प्रतिरूपविद्या सम्बन्धी मन्त्र में 'नमो अरहंताणं' और 'नमो सिद्धाणं' ये दो पद मिलते हैं। 'सिद्धाणं' के साथ में 'सव्व' विशेषण का प्रयोग नहीं मिलता है, किन्तु महानिमित्तविद्या सम्बन्धी मन्त्र में 'सव्व' विशेषण का प्रयोग उपलब्ध होता है। 'सव्व' विशेषण का उपयोग खारवेल के अभिलेखों में भी उपलब्ध है। **अंगविज्जा** में प्रतिहारविद्या सम्बन्धी जो मन्त्र दिया गया है उसमें हमें त्रिपदात्मक नमस्कारमन्त्र का निर्देश मिलता है। इसमें 'नमो अरहंताणं' 'नमो सव्वसिद्धाणं' और 'नमो सव्वसाहूणं' ऐसे तीन पद दिए गए हैं। ज्ञातव्य है कि इसमें सिद्धों और साधुओं के साथ 'सव्व' विशेषण का प्रयोग है। **अंगविज्जा** के इसी अध्याय में भूमिकर्म विद्या और सिद्धविद्या में पञ्चपदात्मक नमस्कारमंत्र उपलब्ध होता है। यह स्पष्ट है कि त्रिपदात्मक नमस्कार मंत्र से 'आयरिआणं' और 'नमो उवज्झायाणं' ऐसे दो पदों की योजनापूर्वक पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का विकास हुआ है। नमस्कारमन्त्र की इस विकास यात्रा में इसकी शब्द योजना में भी आंशिक परिवर्तन हुआ है-ऐसा देखा जाता है। प्रथमतः 'नमो सिद्धाणं' में 'सिद्ध' पद के साथ 'सव्व' विशेषण की योजना हुई और पुनः यह 'सव्व' विशेषण उससे अलग भी किया गया। **अंगविज्जा** और खारवेल का अभिलेख इस घटना के साक्ष्य हैं। जैसा कि हम पूर्व में सूचित कर चुके हैं जहाँ खारवेल के अभिलेख में 'नमो सव्वसिद्धाणं' पाठ मिलता है वहाँ **अंगविज्जा** में 'नमो सिद्धाणं' और 'नमो सव्वसिद्धाणं'-दोनों पाठ मिलते हैं। वर्तमान में जो नमस्कारमन्त्र का 'नमो सव्वसिद्धाणं' और 'नमो सव्व साहूणं' पाठ मिलता है वह **महानिशीथ** सप्तम अध्याय *की चूलिका के प्रचलित पाठ में अनुपलब्ध है।* ***भगवती, प्रज्ञापना, षट्खण्डागम*** **आदि श्वेताम्बर-दिगम्बर आगमों में जो पाठ उपलब्ध होता है उसमें कहीं भी सिद्ध**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद के साथ 'सव्व' (सर्व) विशेषण का प्रयोग नहीं है। इसी प्रकार की दूसरी समस्या 'साहू' पद के विशेषणों को लेकर भी है। वर्तमान में 'साहू' पद के साथ 'लोए' और 'सव्व' इन दो विशेषणों का प्रयोग उपलब्ध होता है। वर्तमान में 'नमो लोए सव्वसाहूणं' पाठ उपलब्ध है किन्तु **अंगविज्जा** में 'नमो सव्वसाहूणं' और 'नमो लोए सव्वसाहूणं' ये दोनों पाठ उपलब्ध हैं। जहाँ प्रतिहार विद्या और स्तूपविद्या सम्बन्धी मन्त्र में 'नमो सव्वसाहूणं' पाठ है, वहीं अंगविद्या, भूमिकर्मविद्या एवं सिद्धविद्या में 'नमो सव्वसाहूणं-ऐसा पाठ मिलता है। **भगवतीसूत्र** की कुछ प्राचीन हस्त-प्रतियों में भी 'लोए' विशेषण उपलब्ध नहीं होता है-ऐसी सूचना उपलब्ध है, यद्यपि इसका प्रमाण मुझे अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। किन्तु तेरापंथ समाज में 'लोए' पद रखने या न रखने को लेकर एक चर्चा अवश्य प्रारम्भ हुई थी और इस सम्बन्ध में कुछ ऊहापोह भी हुआ था। किन्तु अन्त में उन्होंने 'लोए' पाठ रखा। ज्ञातव्य है कि विशेषण रहित 'नमो साहूणं' पद कहीं भी उपलब्ध नहीं होता है। अतः नमस्कारमन्त्र के पञ्चम पद के दो रूप मिलते हैं- 'नमो सव्वसाहूणं' और 'नमो लोए सव्वसाहूणं' और ये दोनों ही रूप **अंगविज्जा** में उपस्थित हैं। इस सम्बन्ध में **अंगविज्जा** की यह विशेषता ध्यान देने योग्य है कि जहाँ त्रिपदात्मक नमस्कार मन्त्र का प्रयोग है वहाँ मात्र 'सव्व' विशेषण का प्रयोग हुआ है और जहाँ पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र का उल्लेख है वहाँ 'लोए' और 'सव्व' दोनों का प्रयोग है। जबकि 'सिद्धाणं' पद के साथ पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र में कहीं भी 'सव्व' विशेषण का प्रयोग नहीं हुआ है मात्र द्विपदात्मक अथवा त्रिपदात्मक नमस्कारमन्त्र में ही 'सिद्धाणं' पद के साथ 'सव्व' विशेषण का प्रयोग देखने में आता है। **अंगविज्जा** में नमस्कारमन्त्र में तो नहीं किन्तु लब्धिपदों के नमस्कार सम्बन्धी मन्त्रों में 'आयरिआणं' पद के साथ 'सव्वेसिं' विशेषण भी देखने को मिला है। वहाँ पूर्ण पद इस प्रकार है- 'णमो माहणिमित्तीणं सव्वेसिं आयरिआणं'। **आवश्यक निर्युक्ति** में उल्लेख है— 'आयरिअ नमुक्कारेण विज्जामंता य सिज्झंति'[५]। इससे यही फलित होता है कि विद्या एवं मन्त्रों की साधना का प्रारम्भ आचार्य के प्रति नमस्कार पूर्वक होता है। इसी सन्दर्भ में 'णमोविज्जाचारणसिद्धाणं तवसिद्धाणं'-ऐसे दो प्रयोग भी **अंगविज्जा** में मिलते हैं। ज्ञातव्य है कि यहाँ 'सिद्ध' पद का अर्थ वह नहीं है जो अर्थ पञ्चपदात्मक नमस्कारमन्त्र में है। यहाँ सिद्ध का तात्पर्य चारणविद्या सिद्ध अथवा तप-सिद्ध है, न कि मुक्त-आत्मा।

नमस्कारमन्त्र के प्रारम्भ में 'नमो' में दन्त्य 'न' का प्रयोग हो या मूर्धन्य 'ण' का प्रयोग हो इसे लेकर विवाद की स्थिति बनी हुई है। जहाँ श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थों में 'नमो' और 'णमो' दोनों ही रूप मिलते हैं, वहाँ दिगम्बर परम्परा में 'णमो' ऐसा एक ही प्रयोग मिलता है। अब अभिलेखीय आधारों पर विशेषरूप से खारवेल के हत्थीगुम्फा अभिलेख और मथुरा के जैन अभिलेखों के अध्ययन से सुस्पष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो चुका है कि 'नमो' पद का प्रयोग ही प्राचीन है और उसके स्थान पर 'णमो' पद का प्रयोग परवर्ती है। वस्तुत: शौरसेनी प्राकृत और महाराष्ट्री प्राकृत के व्याकरण के 'नो ण:' सूत्र के आधार पर परवर्ती काल में दन्त्य 'न' के स्थान पर मूर्धन्य 'ण' का प्रयोग होने लगा। इस सम्बन्ध में **अंगविज्जा** की क्या स्थिति है? यह भी जानना आवश्यक है। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने अपने द्वारा सम्पादित **अंगविज्जा** में नमस्कारमन्त्र के प्रसङ्ग में 'नमो' के स्थान पर 'णमो' का ही प्रयोग किया है। किन्तु मूल में 'णमो' शब्द का प्रयोग स्वीकार करने पर हमें **अंगविज्जा** की भाषा की प्राचीनता पर सन्देह उत्पन्न हो सकता है। क्योंकि प्राचीन अर्धमागधी में सामान्यत: 'नमो' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस सन्दर्भ में मैंने मुनि श्री पुण्यविजय जी के सम्पादन में आधारभूत रही हस्तप्रतों के चित्रों का अवलोकन किया। यद्यपि उनके द्वारा प्रयुक्त हस्तप्रतों में 'नमो' और 'णमो' दोनों ही रूप उपलब्ध होते हैं। जहाँ कागज की दो हस्तप्रतों में 'नमो' पाठ है, वहाँ कागज एक हस्तप्रत में 'णमो' पाठ है। इसी प्रकार सम्पादन में प्रयुक्त ताडपत्रीय दो प्रतों में से जैसलमेर की प्रति (१४वीं शती) में 'नमो' पाठ है। लेकिन परवर्ती खम्भात में लिखी गई (१५वीं शती के उत्तरार्ध १४८९ में लिखी गई निजी संग्रह) प्रति में 'णमो' पाठ है। मात्र यही नहीं कागज की उनके स्व संग्रह की जिस प्रति में 'णमो' पाठ मिला है उसमें भी प्रथम चार पदों में ही 'णमो' पाठ है। पञ्चम पद में 'नमो' पाठ ही है। यही नहीं आगे लब्धिपदों के साथ भी 'नमो' पाठ है। होना तो यह था कि सम्पादन करते समय उन्हें 'नमो' यह प्राचीन प्रतियों का पाठ लेना चाहिए था किन्तु ऐसा लगता है कि मुनि श्री ने भी **हेमचन्द्र-व्याकरण** के 'नो ण:' सूत्र को आधार मानकर 'नमो' के स्थान पर 'णमो' को ही व्याकरण सम्मत स्वीकार किया है। आश्चर्य है कि मुनिश्री ने **अंगविज्जा** की प्रस्तावना में ग्रंथ की भाषा और जैन प्राकृत के विविध प्रयोग शीर्षक के अन्तर्गत महाराष्ट्री प्राकृत से जैन प्राकृत (अर्धमागधी) के अन्तर की लगभग चार पृष्ठों में विस्तृत चर्चा की है और विविध व्यञ्जनों के विकार, अविकार और आगम को समझाया भी है फिर भी उसमें 'न' और 'ण' के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की है। सम्भवत: उन्होंने 'ण' के प्रयोग को ही उपयुक्त मान लिया था। किन्तु मेरा विद्वानों से अनुरोध है कि उन्हें अभिलेखों और प्राचीन हस्तप्रतों में उपलब्ध 'नमो' पाठ को अधिक उपयुक्त मानना चाहिए। वस्तुत: मुनि श्री पुण्यविजय जी ने जिस काल में **अंगविज्जा** के सम्पादन का दुरूह कार्य पूर्ण किया, उस समय तक 'न' और 'ण' में कौन प्राचीन है यह चर्चा प्रारम्भ ही नहीं हुई थी। मेरी जानकारी में इस चर्चा का प्रारम्भ आदरणीय डॉ० के० आर० चन्द्रा के प्रयत्नों से हुआ है, अत: भविष्य में जब कभी इसका पुन: सम्पादन, अनुवाद और प्रकाशन हो तब इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। वस्तुत: महान अध्यवसायी और पुरुषार्थी मुनि श्री पुण्यविजय जी के श्रम का ही यह फल है कि आज हमें **अंगविज्जा** जैसा दुर्लभ ग्रन्थ अध्ययन के लिए उपलब्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। विद्वद्गण उनके इस महान कार्य को कभी नहीं भूलेंगे। आज आवश्यकता है तो इस बात कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुदित करके प्रकाशित किया जाए ताकि प्राकृत भाषा से अपरिचित लोग भी भारतीय संस्कृति की इस अनमोल धरोहर का लाभ उठा सकें।

अंगविज्जा भारतीय निमित्त शास्त्र की विविध विधाओं पर प्रकाश डालने वाला अद्भुत एवं प्राचीनतम् ग्रन्थ है। इसी प्रकार जैन तन्त्र शास्त्र का भी यह अनमोल एवं प्रथम ग्रंथ है। परम्परागत मान्यता और इस ग्रंथ में उपलब्ध आन्तरिक साक्ष्य इस तथ्य के प्रमाण हैं कि यह ग्रंथ दृष्टिवाद के आधार पर निर्मित हुआ है (बारसमे अंगे दिट्ठिवाए..... सुत्तक्किंयं तओ[६] इसमें भारतीय संस्कृति और इतिहास की अमूल्य निधि छिपी हुई है। मुनिश्री पुण्यविजय जी ने अति श्रम करके इसके विभिन्न परिशिष्टों में उसका सङ्केत दिया है और उसी आधार पर वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसकी विस्तृत भूमिका लिखी है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि **अंगविज्जा** भारतीय संस्कृति का अनमोल ग्रन्थ है। इसका अध्ययन अपेक्षित है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में मैंने **अंगविज्जा** के परिप्रेक्ष्य में मात्र नमस्कारमन्त्र की विकास यात्रा की चर्चा की। आगे इच्छा है कि **अंगविज्जा** के आधार पर लब्धि पदों की विकास यात्रा की चर्चा की जाये। ये लब्धि पद सूरिमन्त्र और जैन तान्त्रिक साधना के आधार हैं और इनका प्रथम निर्देश भी **अंगविज्जा** में मिलता है। साथ ही ये नमस्कारमन्त्र के ही एक विकसित स्वरूप हैं। इसकी विस्तृत चर्चा आगे किसी शोध लेख में करेंगे। वस्तुतः मुनि श्री पुण्यविजय जी ने **अंगविज्जा** को सम्पादित एवं प्रकाशित करके ऐसा महान उपकार किया है कि केवल इस पर सैकड़ों शोध लेख और बीसों शोध-प्रबन्ध लिखे जा सकते हैं। विद्वत् वर्ग इस सामग्री का उपयोग करे यही मुनि श्री के प्रति उनकी सर्वोत्तम श्रद्धाञ्जलि होगी।

सन्दर्भ

१. **सामायिक सूत्र** (कायोत्सर्ग- आगार सूत्र- ४) -

२. **महानिशीथ**, (श्रीआगमसुधासिन्धुः-दशमो विभागः) संपा० श्री विजय जिनेन्द्र सूरीश्वर, श्री हर्षपुष्पामृत जैन ग्रंथमाला ग्रन्थांक-७७, लाखा बावल, शांतिपुरी सौराष्ट्र, १/१.

३. तिथ्यर गुणाणमणंत भागमलब्भंतमन्नत्थ, वही- ३/२५.

४. सिद्धाणं णमो किच्चा, **उत्तराध्ययनसूत्र**, (नवसुत्ताणि) जैन विश्वभारती, लाडनूं, २०/१.

५. **आवश्यक निर्युक्ति**, हर्षपुष्पामृत जैन ग्रं०मा०, लाखाबावल, **सौराष्ट्र**-१११०.

६. **अंगविज्जा**- १/१०-११ पृ०- १

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org